भारतीय रेडियो नाटक का उद्भव एवं विकास

Deepak Rathee*

Assistant Director, Credes Media Solution Pvt. Ltd., New Delhi

---------------------------------X---------------------------------

किसी भी भाषा के रेडियो नाटक का अध्ययन करने से पूर्व यह आवश्यक है कि रेडियो नाटक के सम्बन्ध में व्याप्त कुछ एक आरोपों तथा भ्रान्तियों का निराकरण किया जाए। एतद् विषयक सबसे प्रमुख आरोप है कि दृश्य तथा मंच के अभाव में रेडियो से प्रसारित नाटक किस आधार पर कहा जाए? डा0 चन्द्रशेखर को इस विधा के साथ नाटक जोड़ना ही मान्य नहीं। वे इसके लिए किसी ऐसे अभिधान का पूर्ण समर्थन नहीं करते जिसमें शब्द का संयोजन हो।

भारतीय काव्य–शास्त्रा के अनुसार नाटक, रूपक के दस प्रकारों में प्रमुख है। नाट्य–गत चरित्राों का नटों द्वारा आरोप करने के कारण इसे रूपक कहा जाता है और अवस्था के अनुकरण को नाटक कहते हैं। अतः नटों अथवा अभिनेताओं द्वारा नाट्यगत चरित्राों को स्वयं पर आरोपित कर नाट्यगत अवस्थाओं का अनुकरण नाटक कहलाता है।

काव्य–शास्त्रियों ने काव्य को दो श्रेणियों में रखा है। क) श्रव्य काव्य ख) प्रेक्ष्य (दृश्य) काव्य। रूपक अथवा नाटक दृश्य काव्य के अन्तर्गत आता है। प्राचीन समय में वैज्ञानिक आविष्कारों को आधुनिक सुविधाओं के अभाव में नाटक मंच तथा अभिनय (आंगिक, वाचिक, आहार्य, सात्विक) के सन्दर्भों में रूढ़ सा होता गया। वैज्ञानिक प्रगति के साथ अभिव्यक्ति एवं प्रस्तुतीकरण के माध्यम बदलने से साहित्य के रूपों में विविधता आती गई, विशेषतया नाटक की शिल्प रचना में। परिणामस्वरूप नये नाट्य रूप रेडियो नाटक ने जन्म लिया। शिल्प वैविध्य के कारण नाटक के बाह्य स्वरूप में भले ही कुछ परिवर्तन हुआ हो किन्तु आन्तरिक स्वरूप अपरिवर्तित ही रहा। क्योंकि रंगमंच में भी विश्व का उद्भव शब्दों के बीच से होता है और दृश्य अपने में रंगमंच का अनिवार्य तत्व होते हुए भी अपने में स्वतंत्रा नहीं। वह एक परिणति है– शब्द की ओर व्यापक अर्थ में शब्द का अर्थ शब्द और ध्वनि दोनों है। रेडियो नाटक का मूल आधार ही शब्द और ध्वनि है। जिसके माध्यम से बिम्बों को श्रोता तक सम्प्रेक्षित किया जाता है। अतः मात्रा दृश्यात्मकता के आधार पर नाट्य साहित्य को रंगमंचीय नाटक तक ही सीमित करना उचित नहीं हो सकता क्योंकि नाटक का दृश्य तत्व मात्रा रंग विधान आदि साहित्येतर उपकरणों से सम्बन्धित नहीं होता, बल्कि नाटक की रचना, कार्यव्यापार, संवाद भाषा आदि सभी के संयोजन की आन्विति में ऐसी क्षमता होती है, जो पूरी नाट्यकृति को दर्शकों (श्रोताओं) के सम्मुख दृश्य रूप में प्रस्तुत होती है। अतः रेडियो से प्रसारित नाटकों को मात्रा दृश्य के अभाव में नाटक न कहना समीचीन नहीं।

एक ओर भ्रान्ति जो रेडियो–नाटक से जुड़ी है, वह है एकांकी स्वीकारना। हिन्दी के प्रकाशित नाट्य–साहित्य में एकांकी नाटक और रेडियो नाटक का स्पष्ट विभेद नहीं किया गया। यह भ्रान्ति यदि साधारण श्रोताओं तथा पाठकों तक ही सीमित रहती तो स्वीकार्य हो सकता था, किन्तु यह हमारे अनेक साहित्यकारों और समालोचकों तक परिव्याप्त है। डा0 त्रिगुणायत ने तो एकांकियों के तीन भेद–प्रकारों में रेडियो रूपक को भी सम्मिलित कर लिया है।

एकांकी नाटक वह है जिसमें एक ही अंक में पूरी कथा समा जाती है। किन्तु रेडियो नाटकों में एकांकी की इस मूल सरंचनात्मक विशिष्टता का अभाव रहता है। वैसे रेडियो नाटक एक अंक का हो भी सकता है और नहीं भी। रेडियो नाटक के दृश्यों पर छोटा–बड़ा होने का कोई बन्धन नहीं होता। दो पंक्तियो का भी दृश्य हो सकता है। दो सौ पंक्तियों का भी। संक्षेप में रेडियो नाटक प्राचीन नाटकीय शैली में भिन्न अभिनय नाट्य विधा है जिस पर कोई शास्त्रीय नियम लागू नही होता।

रेडियो नाटक

विचार से विचार टकराने को साहित्यिक अखाड़े का संघर्ष करते हैं। यह संघर्ष कहानी का रूप लेता है और उपन्यास, नाटक आदि का भी। पर ये सब साहित्य की विधाएं हैं। इन सबका अपना–अपना परिवेश समाज व्याकरण व तकनीक है। सबके पाठक, श्रोता एवं दर्शक अलग–अलग हैं। इन सबकी चर्चा करना इस शोध का उद्देश्य नहीं है, यहाँ केवल नाटक की ही चर्चा होगी जिसका मंथन किया जाता है, और वाचन भी। साहित्य की इस विधा में एक से अधिक नायक–नायिका होते हैं।

रेडियो श्रव्य माध्यम है। साहित्य की यह विधा जब रेडियो पर सुनी जाती है तो इस पर रेडियो नाटक की मोहर लग जाती है यानी इसे रेडियो नाटक कहने लगते हैं। रेडियो नाटक को अंधेरे का नाटक भी कहा जाता है। क्योंकि इसका मंचन अदृश्य होता है या यह भी कहा जा सकता है कि इसे देखा नहीं जा सकता सिर्फ सुना ही जा सकता है। भाषा, संवाद, नैरेशन ध्वनि एवं संगीत नाटक के उपकरण होते हैं। और कथानक, पात्रा, दृश्य संवाद एवं उद्देश्य नाटक के प्रमुख बिन्दु।

नाटककार में संवेदनशीलता बहुत जरूरी है। अध्ययन एवं अनुभव जितना अधिक होगा उतनी ही उसकी प्रतिक्रिया शक्ति अच्छी होगी। विचारों का विपुल भंडार होगा। संवादों में रोचकता होगी। संवाद धरातल से उठकर श्रोता एवं दर्शकों की जुबां पर पहुँचेगें। नाटककार का कद बढ़ेगा। नाटककार अपने परिवेश के पात्राों से नाटक से सूत्रा प्राप्त कर सकता है और

www.ignited.in

कहानियों से भी। अध्ययन और अनुभव भी नाटक के स्त्रोत बन सकते हैं। पूरे नाटक के लिए नाटककार को समस्याओं से जूझना पड़ता है। कथानक पात्रा, संवाद आदि से कृति को अमली जामा पहनना पड़ता है। पर नाटककार का जीवन संघर्षपूर्ण नाटक नहीं बन सकता। रोचकता के लिए उसमें सम्पादन बहुत जरूरी है।

रेडियो नाटक का अर्थ एवम् स्वरूप

रेडियो द्वारा प्रसारणार्थ जो नाटक लिखे जाते हैं। उन्हें रेडियो नाटक कहते हैं। आज रेडियो नाटक की विधा स्वतन्त्रा रूप में प्रतिष्ठित हो गई है। रेडियो नाटक ध्वनि और शब्दों का नाटकीय सामंजस्य है। ये संश्लिष्ट शब्द चित्रा है, जो संवाद, ध्वनि प्रभाव, संगीत और मौन के सहयोग से इस प्रकार चित्रित होता है कि वह श्रोता के मानस पटल पर स्पष्ट चित्रा की सृष्टि कर सके। रेडियो नाटकों में श्रोता के मानस पटल पर स्पष्ट चित्रा की सृष्टि कर सके। रेडियो नाटकों में श्रोता का सहज सम्बन्ध पात्राों के अन्तर्मन से हो जाता है। ध्वनि विस्तारक यन्त्रा की सहायता से कुछ शब्द, कुछ ध्वनियां श्रोता के मस्तिष्क से टकराती है और बिम्ब निर्मित करती है। बिम्ब अपनी शक्ति के अनुसार इन्द्रियों को झंकृत करते हैं और उन्हें संवेदनशील बनाते हैं। तब कल्पना जागृत हो उठती है और नाटक के सारे पात्रा मनोजगत् के सामने आकर श्रोताओं को अभिभूत कर देते हैं और श्रोता उनकी भावनाओं में आकंठ डूब जाता है। उनकी पीड़ा में उसकी आंखें आर्द्र हो उठती हैं। उनके सुख में सुखी होता है और उनके संघर्ष में तनावग्रस्त हो उठता है। इस संदर्भ में डोनाल्ड मैकहवाइनों का कथन है– इसने रूप, वर्णन, संवेग एवं विचार की ऐसी सृष्टि सम्भव कर दी है जो देश एवं क्षमता को नियंत्राक सीमाओं में नहीं बन्धी है। ध्वनि रेडियो ने अपनी प्रकृति से ही लेखक को उसकी कल्पना के सदृश ही विस्तृत क्षितिज प्रदान किया है। व्यवहारिक दृष्टि से इसमें दृश्य योजना, प्रकाश आदि की भौतिक समस्याएं नहीं हैं। सौन्दर्यपरक दृष्टि, इसके आयाम असीम एवम् अवश्य है।

रेडियो श्रव्य माध्यम है अतः रेडियो नाटक भी श्रव्य होते हैं। उनमें ध्वनि की प्रधानता होती है। डा0 रामकुमार वर्मा रेडियो नाटक को ध्वनि नाटक कहते हैं। रेडियो नाटक को अन्धे का सिनेमा भी कहा जाता है मात्रा सुनकर ही दृश्य सुख की अनुभूति होती है–श्रोता कान को ही आंख बना लेते हैं और नाटक का रसास्वादन करते हैं।

Going to the theatre is something of an occasion, people go there to share in a Communal experience. This phenomonon may be a little less in the case of cinema. non-the-less it is there. The radio play on the other hand has directly to appeal to the listeners imagination, The audience of the radio play has simply to he held by its interest.

रेडियो नाटक का श्रोता नाटक सुनकर ही मानस पटल पर अनेक दृश्यों की परिकल्पना कर लेता है। पात्राों के सुख दुख में सहभागी बन जाता है। भावविभोर हो जाता है, और दृश्य सुख की अनुभूति कर लेता है।

"A radio play is a play addressed to the ear not the eye, enhanced with effects, or incidental noises to add as much realism as the producer, thinks fit and there are different schools of thought as to how many of these effects it is legitimate to use, what the functions of the narratorare, what is the place in all this of musical interludes and so forth."

(BBC Paul Bloomfield, published by Eyre and spot is woode, London).

रेडियो नाटक शब्द ध्वनि और संगीत का समन्वित रूप है। रेडियो नाटक में ध्वनि तीन रूपों में प्रयुक्त होती है पहला उच्चरित शब्द अथवा भाषा दूसरा ध्वनि प्रभाव, तीसरा संगीत। अतः हम कह सकते हैं कि पात्राों के कार्यव्यापारों, ध्वनिप्रभावों, संवादों, संगीत को कथा के सूत्रा में पिरोकर रेडियो पर प्रस्तुतीकरण की क्रिया ही रेडियो नाटक है।

रेडियो नाटक ने एक लम्बी यात्राा की है और आज यह एक स्वतन्त्रा विधा के रूप में प्रतिष्ठित है। जब आकाशवाणी पर मनोरंजनार्थ नाटकों का प्रसारण हुआ था तो साहित्य के प्रख्यात नाटककारों की कृतियों को प्रस्तुतकर्ता रेडियो तकनीकियों द्वारा संचार कर आकाशवाणी पर प्रस्तुत किया करते थे। हिन्दी तथा अन्य भाषाओं की साहित्यिक कृतियों का नाट्य रूपान्तर कर आकाशवाणी से प्रसारण किया जाता था। रेडियो के लोकप्रिय माध्यम द्वारा इनका प्रस्तुतीकरण श्रोताओं के आकर्षण का केन्द्र बिन्दु बना। कालान्तर में नाटककारों ने रेडियो नाटक की तकनीकियों को अपनाकर रेडियो के प्रसारणार्थ स्वतन्त्रा रूप से नाट्य लेखन प्रारम्भ किया और आज यह विधा अपने चरमोत्कर्ष पर है। रेडियो नाटककारों का पृथक अस्तित्व है। स्तरीय नाटकों का लेखन हो रहा है। ये नाटक प्रत्यक्ष रूप से श्रव्य है परोक्ष रूप से दृश्य/श्रव्य होते हुए भी इनमें दृश्य का सा आनन्द लिया जा सकता है श्रोता नाटक के पात्राों की भावनाओं को, नाटक के किरदारों को जैसे आत्मसात् कर लेता है– दोनों एक सूत्रा में आवध्द हो जाते हैं और श्रोता अलौकिक सुख की अनुभूति करता है।

रंगमंचीय नाटक और रेडियो नाटक

रंगमंचीय नाटक और रेडियो नाटक में बहुत अन्तर है। रंगमंचीय नाटकों में दृश्य तथा श्रव्य तत्व विद्यमान है, जबकि रेडियो नाटक मात्रा श्रव्य है।

रंगमंचीय नाटक के मंचन के लिए प्रेक्षागार, खुला मंच की आवश्यकता होती है जहाँ मंच बनाया जा सके। उसके उपरान्त रंगसज्जा रंगदीपन, पात्राो की रूप सज्जा, प्रकाश व्यवस्था, संगीत नेपथ्य, यवणिका, रंगदीपका आदि का समुचित ध्यान रखना पड़ता है। युगानुरूप ही दृश्य सज्जा होती है– प्रेक्षागार में आवश्यकता होती है दर्शकों को जो नाटक का आनन्द ले सकें अपनी भावभंगिमाओं, करतल ध्वनि से नाटक के पात्राों का मनोबल बढ़ा सके–रेडियो नाटक के लिए किसी प्रकार के आडम्बर की आवश्यकता नहीं होती। इसका मंच है आकाशवाणी का स्टुडियो जहाँ माइक के सामने कलाकार अपने वास्तविक अभिनय द्वारा नाटक की कथावस्तु और नाटककार की कल्पना को सुन्दर रूप प्रदान करते हैं। इसके दर्शक नहीं अनगिनत श्रोता होते हैं जो अपने मानस पटल पर किरदारों की छवि और अभिनय को साकार होते हुए देखते हैं और उसी में खो जाते हैं। रेडियो सेट ही इसका प्रेक्षागार है नूतन शिल्प विधि के कारण अनेकानेक विधाओं को अपनी गहनता में समेट लेने में यह पूर्ण रूप से समर्थ है। यदि उपन्यास पॉकेट थियेटर है तो रेडियो नाटक मनोरंजन का मंजूबा है, सपनों का स्त्रोत है।

रंगमंचीय नाटक में विविध प्रकार के अभिनय द्वारा दर्शकों को बांधा जा सकता है।

1. **आंगिक अभिनय** :– इसमें अंगों, उपांगों के संचालन द्वारा किरदार को जीवन्त बनाया जा सकता है दर्शक मंत्रा मुग्ध हो जाते हैं।

2. **वाचिक अभिनय** :– नाट्य शास्त्रा ने अभिनय चार प्रकार का माना गया है– आंगिक या कायिक, वाचिक, आहार्य (वेशभूषा) और सात्त्विक।

इनमें आंगिक को तीन प्रकार का कहा गया है– शरीरज, मुखज तथा चेष्टाकृत। वस्तुतः इनके द्वारा जो अभिनय किया जाता है वह नानाभावरसाश्रय है, अर्थात् भाव तथा विचारों की चेष्टा का प्रदर्शन। अतः आन्तरिक भाव चेष्टा ही आंगिक अभिनय का स्त्राोत है और उसको शासित करता है। रेडियो नाटक में आन्तरिक भावों की अभिव्यक्ति शब्दों और ध्वनि के माध्यम से की जाती है। ध्वनि मूलक संवादों की रचना द्वारा ऐसे शब्द चित्रा, शब्द बिंब, शब्द–मूर्तियाँ गढ़ी जाती हैं। जो चरित्रों की ब्राह्याकृति ही नहीं, चेहरे की सिलवटें, माथे की शिकनें, देह ग्रन्थ, वेशभूषा का रंग ही नहीं प्रत्युत चरित्रा के आन्तरिक ज्वार, दारूण मनः स्थिति, हृदय–स्पन्दन, उल्लासमय–अवस्था, इन सबको मूर्तिमान करती है। कायिक ही नहीं सात्विक भावों को भी संचालित करती है। शब्दों में अभिव्यंजना शक्ति असीम है। शब्द मूलतः नाद धर्मा है। इसलिए नाद के आरोह अवरोह मे ही शब्द का आन्तरिक नाटक निहित है। नाद शब्द को मूल प्रकृति है। शायद इतना कहना ही पर्याप्त नहीं। कहना चाहिये कि नाद ही शब्द है और इसके आरोह–अवरोह की लय है इसको अर्थ सगति में। लय की संगति ही अर्थ संगति की रूढ़ि है। इस रूढ़ि का परिचय वहां विशेष रूप से पाया जाता है जहां तक एक ही स्पैलिंग रहने पर भी अलग–अलग उच्चारण से एक शब्द के क्रिया या संज्ञा होने का आभास पाया जाता है या बलाघात मात्रा बदल देने से एक निश्चित अर्थ के स्थान पर दूसरे निश्चित अर्थ का बोध हो जाता है। अतः लय या बलाघात से शब्दों के उच्चारण द्वारा छाया प्रकाश का प्रभाव सहज ही उत्पन्न किया जा सकता है। रंगमंच पर अभिनेता का कायिक अभिनय दर्शक देख सकते हैं; रेडियो पर विशिष्ट मुद्राओं की जानकारी वाचिक अभिनय द्वारा कराई जाती है जैसे अरे दोस्त भगवान बुद्ध की तरह किस विचार में खोए हो? क्यों बार बार नाक को छू रहे हो? वह देखो किस तरह आँख मटका रहा है, असभ्य कहीं का इत्यादि। इसके अतिरिक्त एक रोगी, घबराये हुए व्यक्ति, भाव विहल्ल व्यक्ति तथा कामासक्त व्यक्ति के बोलने का ढंग साधारण बोलचाल से भिन्न होता है। श्वासों तथा उच्छवासों के उतार चढ़ाव तथा उसके उचित संयोजन द्वारा और संवादों की सहायता से प्रणय क्रीडा को भी इसकी समग्रता में श्रोता तक प्रक्षेपित किया जा सकता है। आणविक विस्फोट, बाढ़, समुद्री, तुफान में फंसे जहाज, रेल, दुर्घटना आदि स्थितियाँ और मनुष्य को क्रिया–प्रतिक्रिया उसके हाव भाव आदि को रेडियो पर सहजता से अभिनीत किया जा सकता है। जबकि रंगमंच पर इस प्रकार की स्थितियों अथवा घटनाओं को दिखाया जाना कठिन है। जबकि रंगमंच पर इस प्रकार की स्थितियों अथवा घटनाओं को दिखाया जाना कठिन है। रंगमंच के लिए कलाकारों का चयन उनके शारीरिक गठन, रंग रूप के आधार पर किया जाता है। किन्तु रेडियो के लिए इसका माप दण्ड है वाक् शक्ति अथवा कलाकार में शब्दों के उच्चारण, स्वर के आरोह–अवरोह, श्वास–उच्छवास आदि की क्षमता।

रंगमंच पर वेशभूषा का विशेष महत्व है, जिसके आधार पर दर्शक निर्णय करता है, कि राजा कौन है और भिखाारी कौन है, कौन नेता है और कौन पागल। किन्तु रेडियो पर दृश्यात्मकता के अभाव में इस प्रकार की कमी शब्दों से पूरी की जाती है। मात्रा उन्हीं वस्त्राों अथवा आभूषणों का संकेत दिया जाता है जिसका सम्बन्ध कथा की घटनाओं अथवा पात्रा की चारित्रिाक विशेषताओं से हो। जैसे बस में इतनी भीड़ थी कि जेब तो कटी ही साथ में कमीज भी फट गई या गांधी टोपी पहन कर क्या किसी सभा में जा रहे थे? रंगमंच पर गांधी टोपी पहने हुए व्यक्ति को दर्शक नेता समझने में भूल नहीं करेगा क्योंकि गांधी टोपी उसे प्रत्यक्ष दीख रही है किन्तु रेडियो पर इसकी कमी शब्दों द्वारा पूरी की जाती है।

आधुनिक रंगमंच आहार्य अभिनय को नकारता जा रहा है। प्रतिदिन पहने जाने वाले वस्त्राों में ही कलाकार मंच पर आते हैं और भिन्न–भिन्न पात्राों की भूमिका निभाते हैं। कई बार तो एक कलाकार ही अनेक भूमिकाएं निभाता है। रेडियो की भांति ही मात्रा शब्द संकेतों से उसका परिचय करा दिया जाता है।

सात्विक अभिनय मात्रा देखने की वस्तु नहीं। इसका सम्बन्ध मानव व आन्तरिक भाव से है जो स्थिति विशेष में जागृत होती है। एक उदाहरण से इसे स्पष्ट किया जाता है। एक लड़की है जिसने किसी पुरूष के स्पर्श का अनुभव नहीं किया। अपने प्रेमी के प्रथम स्पर्श से उसके शरीर में जो सिरहन होती है, उसका प्रदर्शन सात्विक अभिनय कहलाएगा। मंच पर इस प्रकार का प्रदर्शन कठिन है, चलचित्राों में इस प्रकार के भाव को प्रतीक रूप मे किसी पत्ते में कंपन उत्पन्न कर दिखा दिया जाता है। ऐसे भाव प्रदर्शन के लिए मंच पर भी ध्वनियों का सहारा लिया जाता है। कलाकार अपनी वाक् शक्ति के अनुसार इस भाव को प्रदर्शित करता है। रेडियो पर इस भाव को अभिव्यक्ति स्वाभाविक, विश्वसनीय और प्रमाणिक ढंग से की जाती है। जब श्रोता आंख बंद कर एकांत में नाटक सुन रहा है, तो कम्पित स्वर लहरियाँ उसके मानस में कम्पन किए बिना नहीं रह पाती। स्वेद और अश्रु के सम्बन्ध में भी यही तथ्य है कि प्रेक्षागृह की अन्तिम पंक्ति में बैठा व्यक्ति इन्हें सम्भवतः नहीं देख सकता और इन्हें स्पष्ट करने के लिए शब्दों का सहारा लिया जाता है।

भरत ने वाचिक अभिनय को नाटक का शरीर कहा है क्योंकि अभिनय के अन्य अंग उसके अर्थ को व्यजित करते हैं तथा नाटक में वाणी का अभिनय आंगिक अभिनय की स्पष्टता दे देता है। अतः उपुर्यक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि वाचिक अभिनय में आंगिक, आहार्य तथा सात्विक अभिनय की सीमाओं के अतिक्रमण की क्षमता होती है। और रेडियो नाटक का एक मात्रा आधार है वाचिक अभिनय।

3. **सात्विक अभिनय** :– आचार्य भरत के अनुसार सात्विक भाव आठ प्रकार के होते हैं स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, स्वरभेद, वेपयू, अश्रु और प्रलय।

इनसे पात्राों के अभिनय में बड़ी ही स्वाभाविकता आ जाती है। नाटक में सात्विक अभिनय को श्रेष्ठ माना गया है।

4. **आहार्य अभिनय** :– आहार्य अभिनय से तात्पर्य है पात्राों के विचार के अनुरूप वस्त्राभूषणों से अलंकृत होकर मंच पर आना क्योंकि नाटक में वेशभूषा का

बड़ा महत्व होता है। कथावस्तु और युग के अनुरूप ही पात्रों की साज सज्जा होती है जिससे अभिनय में जीवन्तता आती है।

रेडियो नाटक में आंगिक, सात्विक, आहार्य अभिनय की कोई संभावना नहीं होती, मात्रा वाचिक अभिनय द्वारा ही नाटक का प्रसारण होता है, ये शब्दों द्वारा ही अभिनय पक्ष को उजागर करता है। मेरे अनुसार, शब्द हँसाते हैं, शब्द रूलाते हैं, शब्द आक्रोश से भर देते हैं, शब्द संघर्ष को व्यक्त करते हैं।

इसलिए आवश्यक है कि रेडियो के अभिनेता का कंठ बहुत अच्छा हो, आवाज में उतार–चढ़ाव हो जिससे वह नाटककार की भावना को अभिव्यक्त कर सके। इसके लिए आवश्यक है कि संवाद बहुत सशक्त हो। उन्हीं के वाचन से नाटक की कथावस्तु आगे बढ़ती है। किसी भी पात्रा के अन्तर्दन्द्व को स्वगत कथन द्वारा स्वाभाविक ढंग से रेडियो नाटक में उजागर किया जा सकता है। रंगमंचीय नाटक की तुलना में रेडियो नाटक ध्वनि प्रभाव, संगीत और पाज से भी आगे बढ़ाये जाते हैं। इनमें मोन्ताज का उपयोग देश और काल की बिखरी घटनाओं के अनावश्यक विस्तार को कम करने के लिए आसानी से किया जा सकता है जबकि रंग नाटक में ऐसा करना सहज नहीं होता।

रेडियो नाटक और दूरदर्शन के नाटकः– डा0 रमेशचन्द्र त्रिपाठी एवं डा0 पवन अग्रवाल द्वारा सम्पादित पुस्तक 'मीडिया लेखन' के पृष्ठ 63 पर लिखा है कि जिस नाटक का लेखन टेलीविजन के लिए किया जाता है उसे टेलीविजन नाटक की संज्ञा से अभिहीत किया जाता है वास्तव में नाटक नाटक होता है चाहे वह मंच का नाटक हो, फिल्म का हो या टेलीविजन अथवा रेडियो का हो। परिभाषा के स्तर पर नाटक एक ही है। विभिन्न माध्यमों की तकनीकी आवश्यकताओं के आधार पर उनके प्रस्तुतीकरण की विविधताओं को ध्यान में रखते हुए हम उनमें भेद कर सकते हैं।

डॉ0 वीरेन्द्र वर्मा द्वारा सम्पादित पुस्तक हिन्दी साहित्य कोश भाग–1 के पृष्ठ पर लिखते हैं कि टेलीविजन नाटक इस अर्थ में रेडियो नाटक से साम्य रखता है कि दोनों अपने अभिनय स्थान से दूर स्थित नाट्य प्रेमियों का मनोरंजन करते हैं पर दोनों में पर्याप्त अन्तर है। रेडियो नाटक जहां केवल श्रव्य है वहाँ टेलीविजन श्रव्य और दृश्य दोनों है। इस दृष्टि से टेलीविजन नाटक रंगमंचीय नाटक के अत्यन्त निकट है। रेडियो नाटक के तीन उपकरणों संवाद, ध्वनि प्रभाव और संगीत का भी टेलीविजन नाटक में प्रयोग होता है। इसके अतिरिक्त टेलीविजन नाटक में अभिव्यक्ति के अन्य साधन भी उपलब्ध हैं। प्राकृतिक या विशेष प्रयोजन से निर्मित दृश्य वेशभूषा, भाव–भंगिमाएँ और मुख की विभिन्न मुद्राएँ, रंगमंचीय सज्जा, प्रकाश व्यवस्था, विभिन्न कोणों से प्रयुक्त कैमरे आदि।

नाटक रंगमंचीय हो या रेडियो, टेलीविजन का, सभी का शिल्प तत्वाधान एक जैसा ही है। अन्तर तो केवल माध्यम की तकनीक से आता है प्रत्येक प्रकार के नाटकों में पाठकों, श्रोता एवं दर्शकों को अपनी ओर आकर्षण शक्ति होती है। वर्तमान युग, टेलीविजन का युग है। इन पर पात्रों की वेशभूषा, संवाद बोलने का अंदाज, प्राकृति आदि का दर्शक भरपूर आनन्द लेते हैं। इसलिए इसका समाज अन्य प्रकार के नाटकों के समाज से बड़ा है।

रेडियो नाटक की परिभाषाएं

रेडियो नाटक हिन्दी नाटक की अत्याधुनिक उपलब्धि है और श्रोताओं में अत्यन्त लोकप्रिय है। विभिन्न विद्वानों ने इसे अपने–अपने ढंग से परिभाषित किया है।

डॉ0 रामकुमार वर्मा रेडियो नाटक को ध्वनि नाटक कहते हैं और प्रो0 रामचन्द्र महेन्द्र ध्वनि एकांकी। हरिश्चन्द्र खन्ना के कथनानुसार –रेडियो नाटक के प्रारम्भिक काल में, एक महत्वपूर्ण तथ्य सामने आया जो अब रेडियो नाटक का मूलभूत सिद्धान्त है वह यह है कि घटना प्रधान नाटक की अपेक्षा विचार प्रधान या वातावरण प्रधान नाटक ही रेडियो के लिए अधिक उपयुक्त, अधिक सफल और प्रभावोत्पादक होता है। कारण यह है कि अरूप और सूक्ष्म जितनी सफलता से रेडियो द्वारा प्रसारित हो सकता है उतना रूपायित और स्थूल नहीं।

रेडियो आलेख का सर्वप्रथम गुण उसका स्थापत्य है। लुई मैकनीस रचनाकार के लिए रेडियो अभिव्यक्ति का आदर्श माध्यम है इसमें लेखक की गुणवता ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। रेडियो नाटककार यह आशा नहीं कर सकता कि कैमरे के मनमोहक कार्य एवम् अतिदर्शनीय रंगमंचीय प्रभाव उसकी शैलीगत दुर्बलताओं को दूर कर देंगे।

–मार्टिन एसलिन

Val Gielgud dh iqLrd 'The right way to radio play writing में लिखा है – Brodcasting is simply another medium to telling a story. The novelist uses the medium of living actors the cinema uses the medium of the camera and broadcasting users that of the microphone.

रेडियो नाटककार के लिए आवश्यक है कि वह कल्पनाजीवी हो। कल्पना जितनी तीव्र होगी लेखन उतना सशक्त होगा। मानवीय कल्पना में भी जो भी सम्भव है वह रेडियो नाटक में चित्रित हो सकता है क्योंकि रेडियो नाटककार के पास एक विशाल कैनवैस होता है जिसमें वह अपनी कल्पना से शब्दों रूपी तूलिका द्वारा जीवन के अनेक रंग भर सकता है, मानव जीवन के सुन्दरतम चित्रा अंकित कर सकता है। रंगमंचीय नाटक की भांति श्रोता चाक्षुष सुख की अनुभूति कर सकता है जे0 एल0 स्टाइन ने लिखा है– "रेडियो का अन्धा माध्यम कल्पना को अनुप्रमाणित करने की अपनी बेजोड़ शक्ति के कारण एक ऐसे नाट्य प्रकार को सम्भव बनाता है। जो उन विषयों का भी समावेश कर सकता है जिनके निकट फिल्म और रंगमंच कभी नहीं पहुंच सकते।

मार्टिन एसासिन का कहना है – "रेडियो नाटक लेखक को अनुमति देता है कि वह श्रोता को अपने नायक के मन के अन्दर ले जाए अथवा उसका नायक सीधे श्रोता को ही सम्बोधित करे जिससे श्रोता मुख्य पात्रों की आंखों से नाटक के कार्य व्यापार को देख सके या कान में चुपके से कहीं जाने वाली उसकी गोपनीय बातों को सुन सके।"

रेडियो नाटक का सीधा सम्बन्ध श्रोताओं के अन्तर्मन से हो जाता है रेडियो निसर्गतः अन्तर्मन का नाटक है अभिव्यक्ति का अत्यन्त आत्मीय माध्यम है। यह आत्मनिष्ठ नाट्य रूप है रेडियो नाटक के अतिरिक्त ऐसी कोई विधा नहीं है जो मानसिक अन्तर्द्वन्द्व को स्पष्टता और प्रभावोत्पादकता से व्यक्त

कर सके। रंगमंच पर यह सम्भव नहीं। रेडियो नाटककार मानवीय स्पन्दनों का कुशल चित्राकार होता है इसमें यद्यपि कलाकारों तथा श्रोताओं का प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं होता किन्तु फिर भी संवेदना के स्तर पर श्रोता कलाकारों से किसी न किसी रूप में जुड़ जाता है और उससे तादाम्य स्थापित कर लेता है। यही रेडियो नाटक की सफलता है।

रेडियो नाटक : तत्व

पहले संकेत दिया जा चुका है कि माध्यम बदलने से नाटक के बाह्यन्तर में तो भले ही परिवर्तन हो जाए किन्तु इसका आभ्यन्तर नहीं बदलता अथवा नाटक का आस्वादन, शिल्प को विविधता के बावजूद नाट्य तत्व पर ही आधृत है। रेडियो नाटक भी नाटक– केवल प्रस्तुतीकरण के माध्यम का अन्तर है। फलतः किसी सफल नाट्य कृति की तरह अपेक्षित विशेषताओं का इसमें भी रहना आवश्यक है अर्थात् रेडियो नाटक में प्रभावन्विति हेतु कथानक, चरित्रा चित्राण आदि से सम्बन्धित सभी नाट्य –नियम रेडियो–नाटक पर भी समान रूप से लागू होते हैं।" माध्यम की भिन्नता के कारण रेडियो–नाटक की निजी विशेषताओं, क्षमताओं तथा सीमाओं को दृष्टिगत रखते हुए इसके निम्नलिखित तत्व गिनाए जा सकते हैं। क) कथानक ख) चरित्रा ग) ध्वनि घ) उद्देश्य

क) **कथानक** :– कथानक रेडियो नाटक का महत्वपूर्ण तत्व है। इसका सम्बन्ध नाटक की सम्पूर्ण घटनाओं और उसके अवान्तर उपाख्यानों के समूह से है। कारण– कार्यक्रम में नियोजित घटनाओं की श्रृंखला को कथानक कहते हैं और इन घटनाओं की सार्थकता साहित्य में तभी है जब वे मानवीय अर्थों या सन्दर्भों से सम्बद्ध हो।

भारतीय नाट्य–शास्त्रा में कथानक के अन्तर्गत अधिकारिक तथा प्रासंगिक कथा की पांच अर्थ–प्रकृतियों, पांच अवस्थाओं तथा उनकी संयोजक पंचसन्धियों आदि द्वारा कथानक का अत्यन्त सूक्ष्म विवेचन किया है। इसी प्रकार पाश्चात्य विद्वानों ने वस्तु की पांच अवस्थाएँ 1. आरम्भिक घटना 2. कार्य विकास 3. चरम घटना 4. नियति तथा 5. अन्तिम फल मानी है। डॉ0 नगेन्द्र तथा रघुवंश भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों के मतों के समान मानते हैं। अतः रेडियो नाटक में दृश्य नाटक की तरह बीज, आरम्भ, विकास, संघर्ष और अन्त को स्वीकारते हैं।

संकलन वय की रेडियो–नाटक में पूर्ण रूप में अवहेलना की जाती है। क्योंकि इसमें कथा विभिन्न घटना–स्थलों और कालान्तरों पर ले जाकर स्वाभाविक ढंग से उद्घाटित की जा सकती है। इसमें एक बात पर विशेष ध्यान दिया जाता है कि प्रभाव की अन्विति सदा बनी रहे और नाटक का समग्र रूप श्रोताओं को प्रभावित कर सके। वैसे भी नाटक में कार्य का संकलन सर्वाधिक महत्वपूर्ण है समय और स्थल–संकलन के अगभूत मात्रा है।

कथानक घटनाओं रूपी नाटक की पहली सीढ़ी है जिसके ऊपर नाटककार चढ़ कर अपने श्रोताओं की रूचि का पता लगाता है। उनमे जिज्ञासा पैदा करता है। अपने उद्देश्य के अलावा व्यावसायिक दृष्टि से कथानक को आकर्षक बनाना बहुत आवश्यक है। कथानक में एकाग्रता और अन्विति आवश्यक है। रेडियो या टेलीविजन का कथानक रंगमंचीय नाटक की अपेक्षा अधिक लचीला, सरल एवं स्पष्ट होता है।

नाटक का मुख होता है कथानक। इस मुख से नाटक के विचार एवं संवेदना उजागर होती है। जीवन परिवेश एवं समाज से नाटककार की विचार एवं संवेदना प्राप्त होते हैं। नाटककार को मानसिक, सामाजिक एवं बोधिक वर्ष को रूचि का विशेष ध्यान रखना चाहिए क्योंकि यही वर्ग दर्शक, श्रोता एवं समीक्षक होते हैं। इनकी इच्छाओं को नजरअंदाज कदापि नहीं करना चाहिए।

कथानक को ही समीक्षक ने नाटक की थीम, उद्देश्य, मुख्य अंश माना है। इसमें पात्रों के संघर्ष की गाथा होगी और रूप की भी। सुविधा की दृष्टि से नाटककारों ने कथानक के तीन भाग किये हैं– पहला भाग इसमें पात्रों का प्रारंभिक दौर होता है। कथानक का दूसरा भाग क्रिया का शेष, तीसरा भाग संघर्ष को दर्शाता है। तीनों भागों को क्रमबद्धता एवं गतिशीलता पर विशेष ध्यान रखा जाता है। श्रोता व दर्शकों पर नाटक का क्या प्रभाव पड़ेगा उसी के अनुसार नाटककार को नाटक का समापन करना चाहिए।

ख) **चरित्रा** :– रेडियो नाटक में चरित्रा का प्रयोग उन सभी के लिए किया जाता है जो जीवन रूप में नाटक का अंग हैं रेडियो नाटक जीवन के अधिक निकट होने के कारण जन मानस की भावनाओं, आशाओं एवं आकांक्षाओं को अभिव्यक्ति देने में सार्थक एवं सफल रहा है। यही कारण है कि अन्य नाट्य शैलियों की अपेक्षा रेडियो नाटक में चरित्रों को विविधता एवं व्यापकता का आविष्करण संभव है। मानव चरित्रों के साथ साथ मानव रूपात्मक भाव, पशु–पक्षी, तथा जड़ पदार्थ, पेड–पौधे, पाषाण मूर्ति आदि को भी मानव स्वर देकर प्रतीक रूप में लाया जाता है। रेडियो–नाटक के चरित्रा समसामयिक एवं सर्व सामान्य जीवन के सर्वसाधारण प्राणी होते हैं। जिनके भाव, विचार, संवेदनाएँ एवं अनुभूतियाँ नित्य प्रति के जीवन संघर्ष से प्रस्फुटित होती हैं।

अतः इसमें धीरशान्त, धीर ललित, धीरोदत्त एवं धीरोद्धत आदि नायकों के परम्परागत गुणों–अवगुणों के आधार पर चरित्रों का वर्गीकरण मान्य नहीं हो सकता और न ही इनका विभाजन नायक–नायिका भेद, उत्तम, मध्यम, आधम, उच्च, निम्नवर्ग अर्न्तमुख और बर्हिमुख, स्थिर चित्तवाले और अस्थिर चित्तवाले, कल्पनाशील और संस्कार शील अथवा सुबुद्धि, अबुद्धि और जड़ के आधार पर किया जाना सम्भव है। रेडियो नाटक में चरित्रों को हम मुख्यतः दो वर्गों में बांट सकते हैं। 1) केन्द्रीय चरित्रा तथा 2) परिधिगत चरित्रा (सहायक चरित्रा)

1. **केन्द्रीय चरित्राः** रेडियो नाटक सघन और मुख्यतः एकोदद्देशीय होने के कारण इसमें आवश्यक चरित्रों के लिए अवकाश नहीं रहता और न ही सभी चरित्रों के विका स सम्भव होता है। केन्द्रीय चरित्रों से हमारा अभिप्राय उनसे है जो नायक, प्रतिनायक, खलनायक और नायिका आदि के रूप में नायक के कथानक को गति प्रदान कर चरम सीमा तक को स्पर्श करते हुए फलागम की ओर ले जाएँ। केन्द्रीय चरित्रा दो प्रकार के होते हैं। प्रथम जो सम्पूर्ण नाटक में अपना प्रभाव अक्षुण्ण बनाएं रखें अथवा समस्त

नाटक व्यापार पर आरंभ से अन्त तक आच्छादित रहें। इनको 'प्रमुख चरित्रा' कहेंगे। दूसरे वे चरित्रा जो नाटक में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं और प्रमुख चरित्रों को चारित्रिक विशिष्टताओं का उद्घाटन कर उसमें विस्तार और व्यापकता लाते हैं। महत्व अपेक्षाकृत कम होने के कारण इन्हें गौण चरित्रा के अन्तर्गत रखा जाता है।

2. **परिधिगत चरित्रा** :– इन्हें हम सहायक चरित्रा भी कह सकते हैं। केन्द्रीय चरित्रा द्वन्द्व की जीवन शक्ति से भरपूर जटिल और जीवन्त व्यक्तित्व वाले व्यक्ति होते हैं। अतः गृह के साथ साथ उपगृह की भांति प्रत्येक केन्द्रीय चरित्रा के परिधिगत चरित्रा उनके सहयोगी परिचितों, मित्रों, शत्राुओं और परिचितों के रूप में उनके साथ होते हैं। केन्द्रीय चरित्रा के क्रिया व्यापार में सहयोग देना और उसको इच्छापूर्ति हेतु क्रियाशील रहना ही इनका कर्म होता है। अनेक बार रेडियो–नाटककार वातावरण के निर्माण के लिए भी चरित्रों का सहारा लेता है। मात्रा 'जागतो रहो' कहने से हमें रात का आभास मिल जाता है। ऐसे चरित्रों को भी हम परिधिगत चरित्रों के अन्तर्गत मानते हैं।

अतः रेडियो–नाटक में चरित्रों का विभाजन इस प्रकार दिखाया जा सकता है।

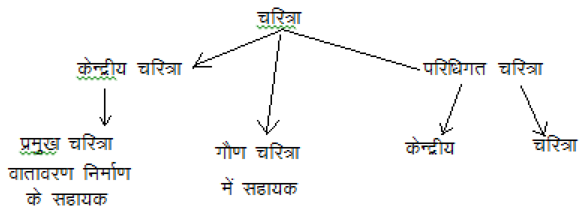

रेडियो–नाटक के चरित्रों में निम्नलिखित विशिष्टताओं का होना अनिवार्य है।

1. **प्रामाणिकता** :– चरित्रों के आचार–व्यवहार तथा कार्य–कलाप, तर्कसंगत हों ताकि श्रोता को उस पर सहज ही विश्वास हो सके और उनकी प्रामाणिकता पर किसी प्रकार का सन्देह न कर सके।

2. **गतिशीलता एवं विकासशीलता** :– रेडियो–नाटक में स्थिर, गतिहीन अथवा स्थित्यात्मक चरित्रों के लिए कोई स्थान नहीं। व्यक्ति के चरित्रा में जो गुणावगुण विद्यमान होते हैं। वही घटनाओं की टकराहट के फलस्वरूप उभर आते हैं। और चरित्रों का विकास होता है। ऐसे ही चरित्रा रेडियो नाटक के लिए अधिक उपयुक्त हैं।

3. **संघर्ष शीलता** :– संघर्ष के अभाव में कोई भी चरित्रा विकास नहीं पा सकता और न ही कथानक को आगे ले जाने में सक्षम होता है। संघर्ष शून्य रेडियो–नाटक एक निर्जीव कृति बनकर रह जाएगा।

ध्वनि :– ध्वनि और शब्दों के उचित सामंजस्य से ही रेडियो नाटक का निर्माण होता है। ध्वनियाँ और शब्द श्रोता के मस्तिष्क से टकराती है। और कुछ चित्रा बना देती है। ये चित्रा अपनी शक्ति के अनुसार उनकी इन्द्रियों को झनझनाते और उसे संवेदनशील बनाते हैं। और तब कल्पना जागृत होकर नाटक के सारे चरित्रा और कार्य व्यापार मनोजगत् के सामने आकर श्रोता को अपने साथ हंसाते–रूलाते और उत्तेजित करते हैं। ध्वनि को रेडियो–नाटक का आधार माना जाता है।

भारतीय मनीषियों ने ध्वनि के दो प्रकार माने हैं–

1. **व्यक्त ध्वनि** :– मनुष्यों ने जिन सब ध्वनियों के अर्थ स्थिर कर लिए हैं, और जो वाणी के द्वारा व्यक्त की जा सके।

2. **अव्यक्त ध्वनि** :– भिन्न–भिन्न पदार्थों के परस्पर आघात से उत्पन्न अर्थात् जो ध्वनि वर्ण के द्वारा नहीं लिखी या व्यक्त की जा सके।

वैदिक साहित्य में वाणी को तीन प्रकार का माना है

1. दैवी वाणी जो योगियों को समाचि अवस्था में सुनाई देती है।

2. भौतिक वाणी के अन्तर्गत वे सभी ध्वनियाँ आती हैं जो पंच महाभूतों से व्यक्त होती है। जैसे बादलों का गर्जन, बिजली की तड़प, आग की सरसराहट आदि

3. पार्थिव वाणी दो प्रकार की है। निरूकता, जो प्रकट सुनाई पड़े और व्यक्त हो तथा अनिरूक्त जो अप्रकट और अव्यक्त हो।

वाणी को चार अवस्थाओं (परा, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी) में वैखरी को निरूक्ता माना जाता है। इसे भी आगे दो प्रकार का बताया है।

1. व्याकृता– मनुष्यों द्वारा सार्थक बनाकर विशिष्ट अर्थों में प्रयुक्त की जाने वाली।

2. अत्याकृता – व्याकृत ध्वनियों के अतिरिक्त शेष सभी ध्वनियाँ। जैसे पशु–पक्षियों की बोलियाँ, बच्चे की तोतली आवाज आदि।

अभिनव भरत के अनुसार सभी काव्यों में केवल व्याकृता वाणी का ही प्रयोग होता है। किन्तु नाटक या रूपक में अव्याकृता का भी प्रयोग किया जाता है या किया जा सकता है। रेडियो नाटक के संदर्भ में इस कथन की सार्थकता और भी बढ़ जाती है। क्योंकि रेडियो नाटक में किसी भी ध्वनि का उपयोग तीन रूपों में किया जाता है। और यही इसके महान त्राय है 1. भाषा 2. ध्वनि प्रभाव 3. संगीत

1. भाषा

रेडियो नाटक के उपकरणों में भाषा का महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि रेडियो नाटक मूलतः शब्दों की शक्ति पर ही आधारित है। सम्पूर्ण नाटक में संवाद सशक्त शब्दों में पिरोए हुए होते हैं। मात्रा श्रवण द्वारा ही इसका रसास्वादन किया जाता है। श्रोता नाटक सुनकर ही अपने मानस पटल पर अनेक दृश्यों की परिकल्पना कर सकता है। दृश्य सुख की अनुभूति कर सकता है, पात्रों के मनोभावों से परिचित हो सकता है। यह तभी संभव है जब नाटक की भाषा में सुन्दर और मर्म स्पर्शी शब्दों का ताना बाना बुना हुआ हो। रेडियो की भाषा की कुछ निराली ही

www.ignited.in

विशेषताएँ हैं विशेष रूप से नाटक को जिनका ध्यान नाटककार को रखना पड़ता है।

1. रेडियो नाटक की भाषा सहज और सम्प्रेषणीय हो। उसमें दुरूहता, अलंकरण की कोई संभावना नहीं होती क्योंकि रेडियो का श्रोता हर वर्ग का होता है अतः भाषा भी सर्वसाधारण के लिए होनी चाहिए वह लोक ग्राहय हो।

2. चित्रात्मकता रेडियो नाटक की भाषा की विशेषता होती है। लेखक को भाषा का चितेरा होना चाहिए। रचनाकार को ऐसे बिम्ब चुनने चाहिए जिन्हें सुनते ही सब कुछ नेत्रों के समक्ष साकार हो जाए। शब्दों के संयोजन द्वारा दृश्य सुख की अनुभूति श्रोताओं को हो सके। नाटककार की भाषा चित्रात्मक होनी चाहिए क्योंकि रेडियो संश्लिष्ट शब्द चित्रा ही होते हैं। चित्राकार कैनवैस पर तूलिका द्वारा चित्रा बनाता है। रंग भरता है तो रेडियो नाटककार शब्दों की तूलिका से नाटक में जीवन के विविध रंग भर सकता है। दृश्य को साकार कर सकता है पात्रों की छवि उकेर सकता है। निम्नलिखित संवादों में शब्दों द्वारा नायिका की मोहक छवि को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

अजीजन – अरे आप कहाँ खो गये?

शमसुद्दीन – खो नहीं गया अज्जी साहिबा। यही सोच रहा था कि कोई जन्नत की हूर रास्ता भूलकर इस लड़की मुहाल की हवेली में कैद तो नहीं हो गई।

अजीजन – कैसी बातें कर रहे हो आज?

3. भाषा पात्रानुकूल होनी चाहिए।

4. भाषा भावानुरूप होनी चाहिए। मानव जीवन की विविध भावनाओं को व्यक्त करने की क्षमता होनी चाहिए।

5. भाषा दुरूह और बेमिसाल न होकर सरल, सहज और स्वाभाविक होनी चाहिए जो जनजीवन से जुड़ी हो जिसमें पात्रों की मनः स्थिति को उजागर करने का प्रयास हो।

6. भाषा में प्रवाह, गतिमयता और जीवन्तता का होना आवश्यक है क्योंकि शब्द ही तो भावनाओं के मूर्त रूप है और यही नाटक को प्राणवान बनाते हैं।

7. शास्त्रीयता की उपेक्षा भाषा के व्यवहारिक उपयोग को अधिक महत्व देना चाहिए।

रेडियो नाटक में भाषा का प्रयोग दो रूपों में किया जाता है। 1. संवाद (कथोपकथन या संलाप) के रूप में तथा 2. नैरेशन अथवा वाचन के रूप में

I- संवाद

रेडियो नाटक का प्राण है। श्रव्य होने के कारण यह शब्दों तथा संवादों पर ही आधारित होता है। संवादों द्वारा ही कथानक का विकास होता है। पात्रों का चरित्रा उभरकर सामने आता है, उनके समग्र व्यक्तित्व का परिचय संवादों द्वारा ही मिलता है। सम्पूर्ण कथावस्तु संवादों में ही इस प्रकार पिरोई रहती है। जैसे माला में मनके। संवादों में प्रवाहमयता और गत्यात्कमता के साथ अभिनेता का भावुक वाचन ही श्रोताओं को रस से सराबोर कर देता है। संवाद नाटक की कथा को आगे बढ़ाते हैं। नाटकीय प्रयोजन सिद्ध करते हैं, परिवेश से परिचित कराते हैं। वातावरण की सृष्टि करते हैं और श्रोताओं को बांधते हैं। संवाद ही श्रोताओं को रूलाते हैं, हंसाते हैं, आक्रोश से भर देते हैं। उनके मन में प्रतिशोध की ज्वाला सुलगाते हैं और उन्हें संवेदना में बांध लेते हैं। इसी कारण नाटक में इस बात का ध्यान प्रस्तुतकर्ता रखते हैं कि अभिनेता की आवाज सुन्दर हो, मधुर हो, उसमें उतार–चढ़ाव हो, वह हर भाव को जीवन्तता से व्यक्त कर सके, वह किरदार को जी सके। संवाद ही श्रोताओं और अभिनेताओं को एक सूत्रा में बांधते हैं। पात्रों की मनःस्थिति को स्वाभाविकता से व्यक्त करते हैं। नाटक में मात्रा वाचिक अभिनय ही तो होता है। वाचिक अभिनय ही जैसे आंगिक, सात्विक, आहार्य अभिनय की पूर्ति करता है। इस कुशलता से नाटककार संवाद लिखता है। पात्रों का अन्तर्द्वन्द्व संवादों द्वारा ही अभिव्यक्त होता है और ये अन्तर्द्वन्द्व श्रोताओं का मन जीत लेते हैं। पात्रों की मनःस्थिति उजागर हो उठती है।

पर्सिवल वाइल्ड के शब्दों में यदि संवाद को संवेगों की अभिव्यक्त बनना है, तो नाटककार को लिखते समय स्वयं उनसे प्रेरित, प्रभावित होना चाहिए। उसमें यह क्षमता होनी चाहिए कि वह अपने पात्रों से कुछ समय के लिए तादाम्य कर ले, जीवन को उसी तरह देखे जिस तरह वे देखते हैं, वही अनुभव करे, जो वे अनुभव करते हैं। नाटककार जब पात्रा के चरित्रा से तादात्म्य कर लेता है तभी वह उसकी मनःस्थिति के अनुरूप संवाद लिख सकता है।

संवाद लिखते समय लेखक स्वयं ही पात्रा के किरदार में खो जाता है तभी वह मर्मस्पर्शी, भाषानुकूल संवाद लिख सकता है। संवाद लेखन की कुछ प्रमुख विशेषताएँ हैं–

1. संवाद पात्रानुरूप हों, सशक्त और पैने हों।

2. संवाद परिवेश के सम्बद्ध हों।

3. अनुभूतिजन्य हो, स्वाभाविक हों सहज सम्प्रेषणीय हों।

4. उनमें प्रवाह और गतिशीलता हों।

5. संवादों का सम्बन्ध कथावस्तु, चरित्रा वस्तु एवं घटनाओं से हों।

6. संवादों में कसाव तथा तारतम्य हो।

7. संवादों में अभिनय पक्ष प्रबल हो, नाटकीयता हो उतार–चढाव हो और गतिमयता हो।

8. स्पष्टता, पात्रानुकूलता एवम् धर्म स्पर्शिता हों। अभिनेताओं द्वारा आसानी से वाचन योग्य हो।

9. कहीं–कहीं बीच में प्रश्नों का समावेश हो।

10. कभी–कभी पात्रा के प्रवेश, प्रस्थान का संकेत भी संवाद द्वारा किया जाता है क्योंकि रेडियो पर तो पात्रों का प्रवेश प्रस्थान दिखाया नहीं जा सकता।

11. **स्वागतकथन** :– कभी–कभी आत्मनिष्ठ भी होते हैं जो पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व को व्यक्त करते हैं इन्हें स्वागतकथन भी कहते हैं। पात्रा जिस अनुभूति को अन्य पात्रों के सम्मुख प्रकट नहीं करना चाहता उसे स्वागतकथन द्वारा श्रोताओं के सम्मुख व्यक्त कर देता है। आवाज के उतार–चढाव तथा माइक की तकनीक से स्पष्ट हो जाता है कि पात्रा के अन्तर्मन में उद्वेग है। यह क्या सोच रहा है किस तनावग्रस्त स्थिति में है, क्या निर्णय लेना चाहता है, सब कुछ आत्मनिष्ठ संवाद द्वारा व्यक्त करता है। स्वागत कथन अर्न्तमन की अभिव्यक्ति होते हैं।

सिनेमा और दूरदर्शन में जो स्थान जो महत्व क्लोजअप का होता है। वही रेडियो नाटक में स्वागत कथन का होता है। संस्कृत नाट्यशास्त्रा में इसे नियत श्रव्य कहते हैं।

रेडियो नाटक संवादों पर ही निर्भर होता है। अतः रचनाकार के लिए आवश्यक है कि वह कथावस्तु की गहराईयों में खोकर, किरदार के चरित्रा मे डूबकर ही संवाद लिखे तभी उसका नाटक श्रोताओं को बांधने, उनके अर्न्तमन को उद्वेलित करने और अन्तस में संवेदना जगाने में सफल हो सकेगा।

2. नैरेशन वाचन

नैरेशन से अभिप्राय रेडियो नाटक के उस संवाद से है, जिसके द्वारा नाटक के क्रिया कलापों के लिए वातावरण निर्मित किया जाता है, घटनाओं की श्रृंखला जोड़ी जाती है तथा परिस्थितियों आदि के अभाव की पूर्ति की जाती है । जिस कार्यकर्ता द्वारा इन संवादों का प्रयोग किया जाता है उसे नैरेटर, प्रवक्ता, सूत्राधार, वाचक, कथाकार, आलोचक, उद्घोषक पुरूष स्वर या स्त्री स्वर आदि कई संज्ञाओं से अभिहित किया जाता है। रंगमंच पर सूत्राधार ओर रेडियो पर नैरेटर अथवा वाचक का समान कार्य होता है।

नैरेशन का कार्य दो प्रकार के वाचकों द्वारा कराया जाता है, एक वे वाचक जिसके जीवन की घटनाएं नाटक के प्रत्यक्ष सम्बन्ध रखती हैं ओर नाटक के अन्य चरित्रों से इस प्रकार घुले मिले होते हैं कि तत्काल उन्हे पृथक नहीं किया जा सकता। इन्हें चरित्रा वाचक भी कहते हैं। दूसरे वाचक वे होते हैं जो नाटक की सभी घटनाओं तथा रहस्यों से परिचित होते हैं। और नाटक के तटस्थ दर्शक एवं प्रवक्ता होते हैं।

2. ध्वनि प्रभाव

वस्तुतः ध्वनि प्रभाव ही वह विशिष्ट तत्व है जो रेडियो नाटक की निजी सम्पति कहा जा सकती है। और रेडियो नाटककार जिसका प्रयोग प्रमुख उपादान के रूप में करता है। दृश्य तत्व के अभाव की पूर्ति अर्थात् परिपार्श्व अथवा वातावरण के निर्माण के अतिरिक्त सम्पूर्ण घटनाचक्र और क्रिया कलाप को जीवन्त बनाने के लिए ध्वनि प्रभावों का प्रयोग किया जाता है। ध्वनि प्रभाव यहाँ वही काम करते हैं जो रंगमंचीय नाटक में प्रापर्टी अर्थात् साज सामान का होता है। इसके अतिरिक्त ध्वनि प्रभाव का प्रयोग कथा को विस्तार देने के लिए तथा चरित्रों को ग्रन्थमयी मानसिक अवस्थाओं को उद्घाटित करने के लिए किया जाता है। नाटक में यर्थाथता तथा स्थूलता लाने के उद्धेश्य से भी ध्वनि प्रभाव का प्रयोग अनिवार्य हो जाता है।

विश्व में अनेक पदार्थ हैं और प्रत्येक पदार्थ को अपनी एक ध्वनि होती है। तकनीकी विकास और सुविधा के कारण अनेक ध्वनि प्रभावों का समन्वित रूप उनके पृथक–पृथक मूल रूप से सर्वथा एक नए भाव बोध की अभिव्यंजना में समर्थ होता है। इसके अतिरिक्त कई बार एक ही ध्वनि प्रभाव का प्रयोग भिन्न भिन्न परिस्थितियों में भिन्न–भिन्न अर्थ को सम्प्रेषित करता है। अतः ध्वनि प्रभावों को पदार्थ अथवा उनके गुणों के आधार पर वर्गीकृत नहीं किया जा सकता। बल्कि उनके सामान्य व्यापार, रंगभूमि का नियोजन तथा ऐसे प्रभावों और गुणों जो संवादों में कही गई बात की पुष्टि करके उसे युक्तिसंगत ठहराते हैं के आधार पर विचार एवं नियोजन अधिक सभ्यक् होगा।

3. संगीत

रेडियो नाटक शिल्प में संगीत का महत्वपूर्ण स्थान है। जीवन को रागात्मक अनुभूतियों की अभिव्यंजना हेतु संगीत के मधुर स्वरों की आवश्यकता होती है। भावात्मक अभिव्यक्ति को क्षमता के कारण प्रारंभ से ही नाटकों में संगीत को एक अनिवार्य तत्व के रूप में स्वीकार किया गया है। रेडियो नाटक में तो इसकी अत्यन्त आवश्यकता होती है। इसका उपयोग कई रूपों में होता है–

1. स्वतन्त्रा रूप में 2. संवादों की पृष्ठभूमि के रूप में 3. दृश्य परिवर्तन हेतु 4. स्मृति दृश्य तथा स्वप्न दृश्य हेतु।

स्वतन्त्रा रूप में नाटकों के वे गीत आते हैं जो पात्रों की मनःस्थिति को व्यक्त करते हैं या वातावरण की सृष्टि करते हैं।

नाटक के संवादों की पृष्ठभूमि के रूप में भी इसका उपयोग महत्वपूर्ण होता है। ये पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व को तीव्रता से व्यक्त करने में समर्थ होता है। वाद्ययन्त्रों पर पात्रों की मनःस्थिति के अनुकूल रागों के स्वर उनकी भावनाओं को सहज और स्वाभाविक रूप से उभारने में सहायक होते हैं। हर्ष, विषद, रागनुराग, जय पराजय आशा–निराशा, उल्लास उदासीनता सभी की अभिव्यंजना की पृष्ठभूमि में इसका उपयोग अत्यन्त प्रभावशाली होता है। इनका प्रस्तुतीकरण धीरे–धीरे वाद्ययन्त्रा पर होता है। इतने सशक्त रूप में नहीं होता कि संवाद दब जायें। संवाद तो प्रमुख ही रहते हैं ये उन्हें उभारने में सहायक होता है, इससे नाटक में भी मर्मस्पर्शिता आती है। चलचित्रा और दूरदर्शन की शान्ति रेडियो नाटक में भी संगीत बहुत आवश्यक होता है। संगीत वातावरण का निर्माण करता है। भावोद्दीपन में सहायता करता है संगीत के मोहक स्वर श्रोताओं के मन को छू लेते हैं। वह पात्रों की भावनाओं में और गहराई में डूब जाता है।

दृश्यान्तर के लिए संगीत का प्रयोग किया जाता है, पुरातन परिवेश, ऐतिहासिक और मिथकादि के लिए शास्त्रीय संगीत और आधुनिक परिवेश पार्टी आदि के लिए पाश्चात्य संगीत को व्यवहार में लाया जा सकता है। संगीत से नाटक में मधुरता, भराव और सरसता आ जाती है। नाटक और रूचिकर हो जाता है, जहाँ इसकी आवश्यकता हो वहीं इसका उपयोग करना चाहिए।

संगीत भी कथावस्तु के अनुरूप ही होना चाहिए। पात्रों के भावानुरूप कथावस्तु के अनुरूप और वातावरण की सृष्टि के

www.ignited.in

लिए संगीत का उपयोग होता है, क्योंकि नाटक संवाद, ध्वनि प्रभाव और संगीत का समन्वित रूप है। नाटककार को इस बात का अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि संगीत का उपयोग नाटक को सशक्त बनाने के लिए नाटकीयता लाने के लिए ही होता है। यह रेडियो नाटक का अनिवार्य तत्व है।

लुई मैकनीस ने कहा है– संगीत कितना भी उत्कृष्ट और महत्वपूर्ण तत्व क्यों न हो उसे पूर्णतः प्रयोजन मूलक होना चाहिए समग्र नाटकीय प्रयोजन के अधीन संगीत को प्राथमिक स्थान ग्रहण करने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए जिनसे पूरी चीज ही संगीत गोष्ठी में बदल जाए।

बिना संगीत की सहायता के तो नाटक हो, लोक नाट्य हो तथा रेडियो नाटक इनकी सरसता ही सम्भव नही– रेडियो नाटक का तो अभिन्न अंग है संगीत। रेडियो नाटक के तीन ही तो मूलाधार हैं– संवाद, ध्वनि प्रभाव और संगीत।

G.C. Awasthy dh iqLrd Breadcasting in India में उल्लिखित है– In short dialogue, south efffects, and music are the tools of the producer of a radio play. The raw materials of this medium as Donald Me Whimmic calls them are- word sound (Which includes music and natural sounds as well as specially contrived music and sound and silence.

शीर्षक

रेडियो नाटक के लिए उसका शीर्षक बहुत महत्व रखता है शीर्षक की उद्घोषणा से ही श्रोता नाटक सुनने के लिए उत्सुक हो उठता है। शीर्षक रोचक हो, उसमें चुम्बकीय आकर्षण हो, कौतुहल की अभिवृद्धि करने वाला हो और नाटक की कथावस्तु से जुड़ा हुआ हो, शीर्षक नाटक की समाप्ति पर, श्रोताओं के मन में गहरी छाप छोड़ जाता है।

रडियो नाटक के प्रकार

1. नाटक क. मौलिक ख. अनूदित ग. रूपान्तरित 2. एक पात्री नाटक 3. झलकी 4. फैंटेंसी 5. गीति नाट्य 6. धारावाहिक नाटक 7. रेडियो कार्टून

1. नाटक :– (अ) मौलिक नाटक – नाटक, नाटककार की भौतिक सर्जना होती है। किसी भी कथावस्तु को संवाद, ध्वनि प्रभाव और संगीत तथा रेडियो की तकनीकियों में बांधकर नाट्य रचना की जाती है इसमें नाटककार अपनी कल्पना के रंग भरता है, अपने ही अनुसार पात्रों के चरित्रा की सृष्टि करता है और वातावरण का प्रदर्शन करता है, यह उसकी अपनी कृति होती है।

(ब) अनूदित नाटक :– विभिन्न भाषाओं के नाटकों का हिन्दी में अनुवाद करके रेडियो पर उसका प्रस्तुतीकरण किया जाता है। इसके लिए अनुवादक को उस भाषा को पूर्णरूपेण जानकारी होनी आवश्यक है। नाटक में परिवर्तन की स्वतन्त्राता उसे नहीं होती।

(स) रूपान्तरित नाटक :– आकाशवाणी से जब नाटकों का प्रसारण प्रारंभ हुआ था तो अनुदित तथा रूपान्तरित नाटक ही प्रसारित किए जाते थे, अंग्रेजी, संस्कृत, बंगला, मराठी, गुजराती और हिन्दी के प्रतिष्ठित साहित्यकारों की कृतियों का नाट्य रूपान्तर कर उसकी प्रस्तुति रेडियो पर की जाती थी। रूपान्तरण में रचनाकार का दायित्व बढ़ जाता है। उसे मूल कृति में से उन्हीं अंशों का चयन करना पड़ता है जिसमें नाटकीयता हो। मूल रचना की आत्मा तथा रचनाकार के कथ्य उद्देश्य की सुरक्षा हो, सके नाटक के दृश्यबन्ध में बन्धकर भी रचना का घटनाक्रम वही रहे, प्रारंभ विकास और अन्त में मूल रचना की भांति हो। मूल कथावस्तु को खोजने का प्रयास करे। कुछ संवाद भी मूल रचना से लेने पड़ते हैं और उन्हें रूपान्तरकार अपने लिखे संवादों में इस प्रकार जोड़ देता है कि एकरूपता बनी रहती है। रेडियो की तकनीकियों ध्वनि प्रभाव संगीत आदि द्वारा रूपान्तरित नाटकों का प्रसारण होता है। रूपान्तरण मौलिक नाट्य रचना से अधिक कठिन विधा है। इससे एक लाभ यह होता है कि प्रख्यात साहित्यकारों की रचनाएं हर वर्ग के लोग चाव से सुनते हैं, परिचित होते है। अब इस विधा ने स्वतन्त्रा रूप धारण कर लिया है, और रूपान्तकार का प्रतिष्ठा मिल गई है।

2. **एक पात्राी नाटक या स्वगतनाट्य** :– एक पात्री नाटक को अंग्रेजी में मोनोलाग कहते हैं, इस नाटक में मात्रा एक ही पात्रा होता है, जो अपने अन्तर्द्वन्द्व के द्वारा सम्पूर्ण नाटक को उजागर करता है। शेक्सपीयर के नाटकों में मंच सज्जा के परिवर्तन के बीच का जो अन्तराल होता या उसमें एक नैरेटर दर्शकों को मंच से जुड़ा रहने के लिए अपने अभिनय और वाचन का एकल प्रस्तुतीकरण करता था संभवतः उसी से मोनोलाग या एक पात्री नाटक का विकास हुआ। सशक्त संवाद इसके लिए आवश्यक होते है।

3. **झलकी (हास्य नाटक)** :– नाट्यशास्त्रा में हास्य नाटक को प्रहसन कहते हैं और रेडियो में झलकी। इसमें हास्य का प्राधान्य रहता है, इसकी प्रसारण अवधि 5, 10, 15 मिनट होती है। इसकी कथावस्तु काल्पनिक होती है, और हास्य, व्यंग्य से परिपूर्ण होती है। झलकी का प्रारंभ रेडियो से हुआ, प्रख्यात साहित्यकार कमलेश्वर का कहना है कि रेडियो में अगर कोई वार्ताकार न आए अथवा कार्यक्रम में अन्तराल की संभावना हो तो उसी समय बैठकर झलकियां लिखा करते थे। लेखक अभिनेता, प्रस्तुतकर्ता सभी रेडियो के होते थे क्योंकि तत्क्षण ही इनका प्रसारण करना होता था।

झलकी रेडियो की एक लोकप्रिय विधा के रूप में स्थापित हो गई। श्रोता इसे सुनकर रसमग्न हो जाते हैं। इसमें हास्य और व्यंग्य की प्रधानता होती है।

4. **फैंटेसी** – फैंटेसी से तात्पर्य है प्रतीक नाटक, इसमें कथा पात्रा, वातावरण काल्पनिक होता है इसमें अति मानवीय चरित्रों को उपस्थित किया जा सकता है। पशु पक्षी, पेड पौधे, मूर्तियां–जड़ वस्तुएँ सभी मनुष्य की भाषा में संवाद बोल सकते हैं। कभी–कभी मानवीय समस्याओं को भी प्रतीकों के माध्यम से

अभिव्यक्त किया जाता है। प्राकृतिक उपकरणों को मूर्त रूप देकर उनके द्वारा नाटक की प्रस्तुति होती है।

5. **गीतिकाव्य या काव्य नाट्य** :– गीतिमय संवाद वाले नाटक को गीतिनाट्य कहते हैं। इसमें संगीत तत्व प्रधान होता है। सम्पूर्ण कथावस्तु गीतिमय संवादों में पिरोई हुई होती है। जिसे पात्रा अपने गायन व वाचिक अभिनय द्वारा प्रस्तुत करते हैं। यह श्रुतिमधुर विधा है।

रेडियो के लिए विशेष रूप से लिखित पहला अंग्रेजी नाटक बी0बी0सी0 से 15 जनवरी 1924 को प्रसारित हुआ था– रिचर्ड हयुजेज का ए0 कामेडी आफ डेंजर।

धारावाहिक नाटक

अभी तक जिन नाटकों का विवेचन किया गया वे अपने में पूर्ण और स्वतन्त्रा होते हैं। इनसे भिन्न धारावाहिक नाटक होते हैं। जो कई किस्तों में प्रसारित किए जाते हैं। नाटक सम्बन्धी जो बाते कहीं गयी हैं वे इन पर भी लागू होती है। पर कुछेक बातें इनके सम्बन्ध में अलग से कही जा सकती हैं। धारावाहिक नाटक दो प्रकार के होते हैं। पहला प्रकार उन नाटकों का है जिनमें शीर्षक एक ही रहता है और मुख्य पात्रा भी सब में वहीं रहते हैं पर स्थितियाँ और समस्याएँ बदलती रहती हैं। आइना, दर्पण, घर बाहर आदि नामों से इस तरह के नाटक प्रसारित होते रहते हैं। इस प्रकार के धारावाहिक नाटक की प्रत्येक कडी को एक स्वतन्त्रा नाटक समझना चाहिए और स्वतन्त्रा नाटक की तरह उनमें वस्तु विन्यास करना चाहिए। ध्यातव्य यही है कि चूंकि मुख्य पात्रा सबमें एक ही रहते हैं। उनमें चारित्रिक वैशिष्ट्य की अनिवति रहनी चाहिए। ऐसा नहीं हो कि एक कड़ी में नायक दृढ संकल्प का व्यक्ति हो, और दूसरी में कमजोर पर निर्भर व्यक्ति। चरित्रा की दृष्टि से ऐसा परिवर्तन विश्वसनीय हो तो किया जा सकता है। किसी भी धारावाहिक की दो कड़ियों में पात्रा वही रहें पर उनके चरित्रा बिल्कुल भिन्न हो, इसे प्रशंसनीय नहीं कहा जा सकता। प्रसिद्ध भोजपुरी धारावाहिक लोहासिंह की हर कड़ी में समस्या बदलती है। स्थिति बदलती है। पर लोह सिंह का विशिष्ट चरित्रा सबमें वही रहता है– सोचने और बोलने का अपना विशेष ढंग, वही शब्दों को तोड़ मरोड कर प्रस्तुत करने की शैली, जिनके फलस्वरूप उस पात्रा की अपनी पहचान बनी रहती है।

धारावाहिक नाटक का दूसरा प्रकार वह जिसमें पहली कडी में शुरू हुई कहानी अन्तिम कडी तक चलती है, एक प्रकार से यह एक बड़ा नाटक होता है जो कई किश्तों में प्रसारित किया जाता है, इस धारावाहिक की हर कड़ी में एक स्वतन्त्रा नाटक नहीं होता। बल्कि हर कड़ी का नाटक बड़े नाटक का एक खण्ड होता है। कभी–कभी कोई बडा नाटक कई खण्डों में प्रसारित किया जाता है। सामान्यतः दो तीन खण्डों में। इस धारावाहिक की रचना रेडियो नाटक की सभी विशेषताओं को ध्यान में रखकर की जानी चाहिए। पर इसके रूप की दीर्घ अवधि को देखते हुए एक बड़े नाटक की दष्टि से इसकी परिकल्पना करनी चाहिए। इसका वस्तु विन्यास एक बड़े नाटक का होगा और इसमें जटिलताओं एवं उपकथाओं के लिए अवकाश रहेगा। इसकी हर कडी के अन्तर पर यदि कोई नाटक दो या तीन खण्डों में प्रसारित होता है तो हर खण्ड के अन्त पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता होती है। हर कडी को किसी प्रश्न या जिज्ञासा के बिन्दु पर समाप्त होना चाहिए। जिससे आगे के प्रसंगों के लिए श्रोताओं से उत्कण्ठा बनी रहे। जैसे किसी बडे नाटक के अंकों की समाप्ति के बारे में कहा जता है कि जिस पात्रा के बारे में दर्शक जानते हैं कि वह मर चुका है पर वास्तव में, जो जीवित है उसके सहसा प्रकट होने पर पर्दा गिरना चाहिए, वैसे ही रेडियो धारावाहिक की हर कड़ी का अन्त कौतुहल वर्धक बिन्दु पर होना चाहिए। हर कड़ी अपने में पूर्ण नहीं है आगे के लिए संकेत है– वह बन्द दरवाजा नहीं अधखुली खिड़की है।

7. कार्टून नाटक :– आजकल रेडियो पर नाटक अत्यन्त लोकप्रिय हो रहे हैं। "इस शब्द का प्रयोग सन् 1972 ई0 से प्रारंभ हुआ। इसके प्रथम प्रयोगकर्ता कलकता रेडियो केन्द्र के तत्कालीन निदेशक श्री दिलीप कुमार सेन गुप्ता हैं। उनके अनुसार रेडियो कार्टून, शब्दों द्वारा वही काम करता है, जो अखबारी कार्टून रेखाओं द्वारा"–

दिलीप कुमार सेन गुप्ता का कहना है कि रेडियो कार्टून की अवधि केवल डेढ से दो मिनट के बीच होती है। रेडियो कार्टून की रचना इस तरह की होनी चाहिए कि अखबारों में जो कार्टून मिलते हैं। उसी तरह का एक हू–ब–हू कार्टून का नक्शा इसी अवधि के अन्दर श्रोताओं की आंखों के सामने खिंच जाए। शब्दों के माध्यम से ही कार्टून नाटक भी बनते हैं।

रेडियो नाटक श्रव्य साहित्य की वह विधा है, जिसका शरीर है प्रसारण, सशक्त संवाद जिसके प्राण हैं जिसे तकनीकि माध्यम से ध्वनि प्रभाव, संगीत, पात्रा तथा सुन्दर कथावस्तु के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है। कसी हुई कथावस्तु, सशक्त एवम् मर्मस्पर्शी संवादों के कारण वह श्रव्य होते हुए भी दृश्य नाटकों के गुणों से आपूरित होता है। यदि उपन्यास एक पॉकेट थियेटर है, बिहारी के दोहे गागर में सागर हैं, कहानी द्रुतगति से गन्तव्य तक पहुंचाने वाला अश्व है तो रेडियो नाटक मनोरंजन की मंजूषा है। यह साहित्याकाश में धूमकेतू की भांति आच्छादित होकर श्रोताओं का कौतूहल शान्त करने में, संवेदना से सरोबार करने में पूर्ण सक्षम है।

एकांकी नाटक : एक सम्पूर्ण नाटक में अनेक अंक होते हैं, और इस अंक में एक अथवा अनेक दृश्य। यह विभाजन नाटक के कथानक तक विकास के अनेक स्थलों के कारण आवश्यक भी है। इस कथा विकास में अनेक मुख्य और गौण घटनाओं का प्रयोग किया जाता है। दूसरी ओर एकांकी नाटक एक ही अंक में समाप्त होने वाला नाटक है। इसमें केवल एक मात्रा सुस्पष्ट, सुनिश्चित उद्देश्य होता है, उसमें गौण प्रसंग और पात्रा, समस्या और घटना को कोई स्थान नहीं दिया जाता है।

एकांकी नाटक की कथा संक्षिप्त और सीमित होनी चाहिए। उनमें एक चमत्कारी घटना, एक उद्दीप्त, क्षण अथवा एक तीव्र परिस्थिति का एक ही अंक में वर्णन और व्याख्या होनी अनिवार्य है।

नाटक के तीन क्षेत्रा :– वर्तमान समय में तीन क्षेत्रों में रूपक का प्रयोग होता है। एक रंगमंच है, दूसरा सिनेमा और तीसरा रेडियो। इन तीनों क्षेत्रों में तीन भिन्न प्रकार के नाटकों की आवश्यकता होती है। इन तीनों प्रकार के रूपकों की रचना में तीन भिन्न प्रकार के नियमों और सिद्धान्तों, शैलियों और तन्त्रों का प्रयोग करना पड़ता है।

आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि ब्रिटिश ब्राडकास्टिंग कारपोरेशन लंदन से एक वर्ष में 1200 रेडियो रूपक प्रसारित

किये जाते हैं। रूपक रेडियो संसार की सर्व प्रिय रचना है। इसके सम्बन्ध में वहां नित नये प्रयोग और परीक्षण किये जाते हैं। रेडियो से प्रसारित होने वाला ध्वनि रूपक अथवा नाटक साहित्य के लिए एक नई प्रकार की रचना है। वह रंगमंच के रूपक और सिनेमा कहानी से अनेक बातों में भिन्न है।

रूपक क्या है– आप पूछेंगे फिर रूपक किसे कहते हैं और रेडियो रूपक और साधारण नाटक एक दूसरे से किस प्रकार भिन्न हैं? रूपक एक क्रिया कहानी। वह कहानी जो क्रिया अर्थात् एक्शन के द्वारा कही जाती है।

भारतीय आचार्यों ने साहित्य अथवा काव्य के दो भेद किये हैं। एक श्रव्य काव्य है तथा दूसरा दृश्य काव्य। श्रव्य–काव्य पठन पाठन के लिए होता है, यथा निबन्ध, कहानी कविता आदि। दृश्य–काव्य को साहित्य जगत में रूपक या नाटक का नाम दिया जाता है। रूपक में अभिनय करने वाला किसी दूसरे व्यक्ति का रूप धारण करके उसके अनुसार हाव–भाव करता और बोलता है......... इसलिए ऐसे काव्य को रूपक का नाम दिया जाता है।'' रूपक साहित्य के अन्तर्गत उसी समय आता है जब उसमें किसी व्यक्ति के कृत्यों के अनुकरण के साथ कथोपकथन का भी समावेश किया जाता है। उसमें कहानी या उपन्यास के वे सभी तत्व विद्यमान होते हैं, जिन्हें कथानक पात्रा, चरित्रा–चित्राण, कथोपकथन और वातावरण के नाम से पुकारा जाता है।

अभिनय अथवा व्यक्ति के कृत्यों का अनुकरण करना रूपक का उद्देश्य है। अभिनय में कुछ व्यक्ति किसी अन्य व्यक्तियों का आंगिक (चलना, फिरना, आदि) वाचिक (वाणी, सम्बन्धी) आहार्य (वेशभूषा सम्बन्धी) और सात्विक भावों (हसंना, रोना, रोमांचादि) का अनुकरण करता है। इस प्रकार रूपक में चार प्रकार के अभिनय का समावेश किया जाता है। इस अभिनय में जीवन के एक अथवा अनेक पहलुओं का प्रदर्शन किया जा सकता है।

सन्दर्भ

Dr. Nagendra (2016). Radio Progamme Production, Kanishka Publishers, Distributor, New Delhi

K. M. Srinivastava (1989). Sterling Publishers Pvt. Ltd., New Delhi 1989

आलोक सक्सेना – आकाशवाणी जी आवाज का जादूगर उद्घोषक, कनिष्क पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली – 2

कौशल शर्मा (2007). रेडियो प्रसारण, प्रतिमा प्रतिष्ठान, नई दिल्ली

Martin Shingler and Cindy (1998). Wiaringa, Arold Publication, New York

I am Hargreales (2003). Jaurnalism Truth or Dare, Oxford University Press.

Philip Rayner (2001). Peter Wall, Stephen Ksuger Media Studies – The essential Introduction Rautledge New York

Warm K. Agree (1979). Introduction to Mass Communication, Oxford IBH Publishing Co. New Delhi.

Corresponding Author

Deepak Rathee*

Assistant Director, Credes Media Solution Pvt. Ltd., New Delhi

E-Mail – ratheedeepak14@gmail.com